Hill Quest: A Multidisciplinary, National Peer-Reviewed Journal
ISSN 2454-3144 | Volume 10, Issue 01, January-June 2023
http://hillquest.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2023

मंडी जनपद का प्रसिद्ध लुड्डी लोकनृत्य एवं लुड्डी लोकगीत

DR. KALYAN CHAND MANDHOTRA

Associate Professor (Music), Govt. Degree College Drang at Narla, Mandi. Himachal Pradesh

शोध-सार

प्राचीन समय से ही लोकसंगीत की समृद्ध परम्परा रही है। लोकसंगीत में जहां एक ओर क्षेत्र विशेष की संस्कृति प्रतिबिम्बित होती है, वहाँ दूसरी ओर इसमें गायन, वादन एवं नृत्य, इन तीनों विधाओं का समन्वित रूप भी परिलक्षित होता है। वास्तव में लोकसंगीत, लोकसंस्कृति का वाहक होता है। लोकसंस्कृति को सुरक्षित रखने में लोकसंगीत की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है तथा रीति-रिवाजों परम्पराओं और व्यवहार के प्रतिमानों को बनाए रखने में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। मण्डी जनपद सांस्कृतिक दृष्टि से जितना समृद्ध है, उतना ही इसका सांगीतिक पक्ष भी सुदृढ़ एवं प्रबल है। इसमें प्रयुक्त गीतों में भावमय अभिव्यक्ति सरल एवं मूलभूत स्वर तथा लय तत्त्वों के कारण हुई है। यहां के लोकसंगीत तथा लोकनृत्यों की सरसता व मधुरता मानों हृदय को आन्दोलित करती है। मण्डी अंचल के अधिकांश लोकनृत्य सामूहिक है। इस क्षेत्र की संस्कृति ने प्राकृतिक दृष्टि से यहां के जन-जीवन को अतीत से आज तक प्रभावित किया है, परन्तु आधुनिकता की अंधी भागदौड़ में युवा वर्ग अपने पारम्परिक लोकनृत्यों तथा लोकगीतों को भूलते जा रहे हैं। मण्डी क्षेत्र लोकसंगीत की दृष्टि से अपना विशेष महत्त्व बनाए हुए है। मण्डी जनपद का लोकसंगीत जन-जीवन का एक अभिन्न अंग है जो यहां के जनजीवन को आज भी प्रभावित किए हुए है। इस संगीत में उस सांस्कृतिक वैभव के दर्शन होते हैं जिसमें भाषा, व्यवहार, रीति-रिवाज, आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान, ज्ञान, कला-कौशल, धर्म, दर्शन, सामाजिक मानस चेतना तथा सौंदर्य-बोध आदि ध्वनित होते हैं।

मुख्य शब्द- मंडी जनपद, लुड्डी लोकनृत्य, लुड्डी लोकगीत

लोकनृत्य

नृत्य शब्द की व्युत्पति 'नृत' धातु से मानी गई है। 'नृती मात्र विक्षेपे'। इस प्रकार नृत्य का अर्थ हुआ 'मात्र विक्षेपण' अर्थात् पग् हस्तादि अंगों का कलात्मक ढंग से संचानल। 'नृत्य प्राणी मात्र के आन्तरिक उल्लास और चिरंतन की प्रक्रिया है। जब कोई व्यक्ति हर्षातिरेक से आनन्दविभोर होता है, तब स्वतः उसके अंगों में गतिशीलता आ जाती है, और वह अनायास ही नृत्य करने को आतुर हो उठता है।'[1]

नृत्य की उत्पत्ति मानव जीवन के उन क्षणों में हुई, जब वह धरती पर अवतीर्ण हुआ और अपने भावों को व्यक्त करने के लिए सचेत हुआ। भावों को व्यक्त करने की प्रवृति मानव में प्रारम्भ से ही रही है, इस तथ्य को यदि बौद्विक विकास के सन्दर्भ में देखा जाए तो ज्ञात होता है कि आदि मानव वन - बीहड़ों व कन्दराओं में पशुवत रहता था। भाषा के बोध से वह अनभिज्ञ था, अतः मनोवैज्ञानिक भावाभिव्यक्ति हेतु भिन्न-भिन्न संकेत सूचक अंग प्रत्यंगों का परिचालन किया करता और अत्यधिक प्रसन्नचित होता था तो हाथ पाँव पटक कर उछलता-कूदता, विपरीत क्रोधातुर स्थिति में भी भिन्न-2 चेष्टाओं द्वारा मनोदगारों को अभिव्यक्ति प्रदान करता। अतः प्रारम्भिक नृत्य मानवीय दैनिक अभिव्यक्ति का आधार था। कालान्तर में ज्यों-ज्यों समय बीतता गया आदि मानव सभ्य होता गया तथा उसने सभ्यता तथा संस्कृति का पुट नृत्य कला में भी दिया इसी का परिणाम आज की विभिन्न नृत्यशैलियाँ हैं। वेदों, नाट्यशास्त्र, रामायण, महाभारत, शिवपुराण नंदिकेश्वर कृत मानवीय सभ्यता और संस्कृति का अत्यन्त प्राचीन अंग है, जो समस्त देशों की सभ्य-असभ्य सभी जातियों में अभिनव दर्पण, महापात्र कृत अभिनव चन्द्रिका आदि कई प्राचीन महत्वपूर्ण ग्रन्थों में भी नृत्य का विषद् वर्णन मिलता है। नृत्य सार्वभौमिक आदिम कला है। यह प्रागैतिहासिक काल से विद्यमान रहा है। इससे शरीर स्वस्थ रहता है, और मन को आनन्द प्राप्त होता है। यह व्यक्ति के साथ ही जन-मनरन्जन और सुख प्रदान करने वाली एक महŸवपूर्ण कला है। ताण्डव नृत्य - वेदों पुराणों एवं भारतीय संस्कृति में ताण्डव नृत्य का वर्णन हुआ है।

''रेचका अङ्गहाराश्च पिण्डीबन्धास्त थैव च।।

Hill Quest: A Multidisciplinary, National Peer-Reviewed Journal
ISSN 2454-3144 | Volume 10, Issue 01, January-June 2023
http://hillquest.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2023

सृडद्वा भगवता दत्तास्तण्डवे मुनये तदा।

तेनापि हि ततः सम्यग्बान भण्डसमान्वितः।।

नृतप्रयोगः सृडटो यः स ताण्डव इति स्मृतः ।''[2]

इस प्रकार भगवान शिव ने रोचक, अंगहार तथा पिण्डीवन्धों के सृजन कार्य को पूर्ण करने के पश्चात् नृत्य को तण्डु मुनि को प्रदान कर दिया। तब तण्डु मुनि ने गान तथा भाण्डवाद्य (वाद्य तथा गीत) से संयुक्त कर जिस नृत्य प्रयोग की सर्जना की वह ''ताण्डव'' नाम से प्रसिद्ध हुआ। मालविकाग्निमित्रम में डा. रमाशंकर पाण्डेय जी ने लास्य और ताण्डव नृत्य का वर्णन इस प्रकार किया है:

'' स्त्रीनृत्यं लास्यामित्युक्तं पुनृत्यं ताण्डवं मतम् ।।

अर्थात पार्वती जी के नृत्य को लास्य और शंकर भगवान के नृत्य को ताण्डव कहते हैं।''[3] श्रीमद् वाल्मीकि रामायण में अयोध्या काण्ड में नृत्य का वर्णन मिलता है।

'' सर्वे च तालवचरा गाणिकाश्च् स्वलंकृताः''।।

राम के राज्याभिषेक के अवसर पर तालावचर (नर्तक) तथा गणिकाएं राजभवन की दूसरी डयोढ़ी पर उपस्थित थीं और सम्भवतः नृत्य के लिए वेश्याएं भी बुलाई गई थी।''[4]

''शिव प्रदोष - स्त्रोत के अनुसार जगजननी गौरी को सुवर्णसिंहा - सनारूढ़ कर प्रदोष के समय शूलपाणि शंकर ने नृत्य करने की इच्छा की । इस अवसर पर सभी देवता उपस्थित होकर उनका स्तुतिगान करने लगे। वहाँ लक्ष्मी ने अपना गान प्रस्तुत किया। विष्णु ने मृदंग वादन किया। सरस्वती ने वीणा, इन्द्र ने वेणु तथा ब्रह्मा ने करताल का वादन किया। इस प्रकार उत्पन्न नृत्य समन्वित सांगीतोत्सव के दर्शनार्थ गन्धर्व यक्ष, उरग, पतड्ग, विधाधर, देवता अप्सराएं आदि सभी उपस्थित थे।''[5] संगीत परिजात में भी नृत्य का वर्णन मिलता है यथाः-

देवस्य मानवों गानं वाद्य नृत्यनतन्द्रितः

कुर्य्याद्विष्णेः प्रसादार्थमिति शास्त्रे प्रकीर्तितम् ।। 15 ।।

'मनुष्यों द्वारा गायन, वादन तथा नृत्य तलीनता से किया गया हो, तो वह भगवान विष्णु को प्रसन्न कर देता है, ऐसा ही शास्त्रों में कहा गया है।'[6] नृत्य के प्राचीनतम् अवशेष सिन्धु सभ्यता के अवशेषों में प्राप्त नर्तकियों की मूर्तियों में मिलते हैं। उनके शरीर अलंकृत तथा परिधान रहित हैं, इनके अतिरिक्त दो मूर्तियों तथा मुद्राओं पर नर्तकों के अंकन (चित्र) प्राप्त हुए हैं, जिससे यह स्पष्ट है कि उस समय पुरुष और स्त्रियाँ दोनों नृत्य करते थे। ऋग्वेद में दोनों के नृत्य करने के उल्लेख मिलते हैं। वैदिक काल के पश्चात् नृत्यकला का तेजी से विकास हुआ। पंचगरूक जातक के अनुसार ''बोधिसत्व के राज्याभिषेक के अवसर पर 16000 नर्तकियों ने नृत्य किया।''[7]

ऋग्वेद के अनुसार:-

'' अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोणुति वद उस्त्रेव वर्जहम ।।

ऋग्वेद में पुरूष और स्त्री दोनों के नृत्य करने के उल्लेख मिलते हैं। नर्तकियाँ मनोरम वस्त्रों के द्वारा अपने शरीर को सजाकर उषा की भान्ति प्रकट होती थीं। नृत्य के समय उनके वक्ष-स्थल अनावृत होते थे।''[8] नृत्य और गान को मोक्ष प्राप्ति का श्रेष्ठतम साधन माना गया है। ''द्वारिका - महात्म्य'' में लिखा है:

Hill Quest: A Multidisciplinary, National Peer-Reviewed Journal
ISSN 2454-3144 | Volume 10, Issue 01, January-June 2023
http://hillquest.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2023

योपृत्यति प्रहष्टात्मा भावैरत्यन्तभक्तितः।

सनिर्द्रहति पापानि जन्मानतर शतैरपि।।

अर्थात - ''जो प्रसन्नचित से, श्रद्धा और भक्तिपूर्वक, भावों सहित नृत्य करते हैं, वे जन्म-जन्मान्तरों के पापों से मुक्त हो जाते हैं।''[9] प्राचीन शास्त्रों में नृत्यसम्बन्धि विवरण से यह आभास होता है कि सामाजिक उन्नति के लिए इसका सर्वत्र ही प्रयोग किया जाता था। भरतनाट्य शास्त्र में नृत्य का विस्तृत विवरण हुआ है। जिसके विकास का प्रयत्न नन्दिकेश्वर, कोहल, दत्तिल, मतंग, अभिनवगुप्त एवं शारंगदेव जैसे आचार्यों ने अपने-2 ग्रन्थों द्वारा किया है।

नृत्य का जन्म शंकर-पार्वती के नृत्य से ही माना गया है। यदि भगवान शिव को संगीत कला का अविष्कारक माना जाए तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। ''ताण्डव नृत्य'' जो भगवान शंकर द्वारा अविष्कृत किया गया, जिसे स्वयं भगवान शंकर किया करते थे, इस नृत्य को पुरुष नृत्य कहा गया है।

पार्वती जी ने जो नृत्य किया उसे ''लास्य नृत्य'' अर्थात् स्त्री नृत्य कहा गया है। इस नृत्य को केवल स्त्रियाँ ही करती हैं। ''नाट्यशास्त्र'' के चतुर्थ अध्याय ''ताण्डव लक्षणम्'' में ताण्डव नृत्य के लक्षणों का वर्णन किया गया है। नृत्य के आयोजन की विधि और ''ताण्डवनृत्य'' के सम्पूर्ण अंगों का विस्तृत विवरण इस अध्याय में किया गया है। शिव और पार्वती के नृत्य से सम्बन्धित चतुर्थ अध्याय के श्लोक 251 में नृत्य के बारे में कहा गया है। ''रेचक तथा अंगहारों से युक्त शिव को नृत्य करते देख पार्वती ने भी सुकुमार प्रयोगों से युक्त एक नृत्य किया।।''[10] अर्थात् शिवजी ने ''ताण्डव नृत्य'' किया और पार्वती जी ने ''लास्यनृत्य'' किया। ''वैदिक काल में गायन-वादन के साथ नृत्यों का प्रदर्शन किया जाता था। वे प्रदर्शन यज्ञों के अवसर पर छोटे-2 मंचों पर और अन्य प्रसंगों पर विस्तृत मैदानों में किये जाते थे। नर्तकी और नर्तक सोमरस का पान कर सामूहिक नृत्य करते थे। नर्तकियां पैरों में घुंघरू बांध कर नाचती थी।''[11]

''नृत्य संगीत जैसी कलाएं भावाभिव्यक्ति के लिए प्रायः मनुष्य के शाश्वत भावों को ही अपना आधार बनाती हैं, व्यक्त करती हैं और उजागर करती हैं।''[12] डा. शरदचन्द्र श्रीधर के अनुसारः ''नृत्य कला उतनी ही प्राचीन है जितनी मानव जाति। जब से मानव ने अपने भावों को विभिन्न अंगों द्वारा प्रकट करने का प्रयास किया, तभी से नृत्य कला का सूत्रपात हुआ।''[13]

वास्तव में लोकनृत्यों का जन्म ही लोक से हुआ है। मण्डी अंचल में प्रचलित विभिन्न लोकनृत्य यहाँ के मानव जीवन के प्रत्येक पहलू से जुड़े हुए हैं। इन लोकनृत्यों को मात्र देखने से ही यहाँ के जन-जीवन की स्पष्ट झलक सामने आ जाती है। यहाँ प्रचलित लोकनृत्य इतने सहज एवं हृदयग्राहय् हैं कि इन्हें समझने में अधिक बुद्धि अथवा अभ्यास की आवश्यकता नहीं पड़ती, इसी सहजता एवं सरलता के कारण यहाँ के बच्चे भी लोकनृत्यों का अनुसरण जल्दी ही प्रारम्भ कर देते हैं। इन लोकनृत्यों में किसी भी प्रकार के कठोर नियमों का विधान नहीं रहता, अपितु परम्परा का अनुसरण अवश्य रहता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी मस्ती में नृत्य गीतों के बोलों को सुनकर भावों की अभिव्यक्ति करता है, तथा भावों के प्रदर्शन में भी स्वतन्त्रता रहती है। यह आवश्यक नहीं है कि एक नर्तकी की भाव भंगिमाएं एक दूसरे के समान ही हों, अपितु एक क्रम अवश्य रहता है। यहाँ के विभिन्न लोकनृत्य केवल मनोरंजन के ही साधन नहीं रहें हैं, बल्कि प्राचीन काल से धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के भी अधिष्ठाता रहे हैं। मण्डी अंचल में जितने भी लोकनृत्य प्रचलित हैं, वे यहाँ के लोगों का जाना बुझा नृत्य नहीं है बल्कि ये लोग दिन के कार्यकलापों से जब थक जाते हैं तो अपनी थकावट को भलाने हेतु लोकनृत्यों का सहारा लेते हैं। लोकनृत्यों का जन्म वास्तव में किसी विशिष्ट व्यक्ति द्वारा नहीं किया जाता बल्कि ये नृत्य अपने आप ही निर्मित हुए ज्ञात होते हैं। इन लोकनृत्यों से प्राप्त आनन्द चर्मोत्कर्षाभिव्यक्ति का नाम हीं लोकनृत्य है।

Hill Quest: A Multidisciplinary, National Peer-Reviewed Journal
ISSN 2454-3144 | Volume 10, Issue 01, January-June 2023
http://hillquest.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2023

लोक अर्थ एवं परिभाषा

लोक शब्द का अर्थ देखने वाला है। इस प्रकार वह समस्त जन-समुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहलाएगा। लोक शब्द अत्यन्त प्राचीन है। साधारण जनता के अर्थ में इसका प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर किया गया है। ऋग्वेद में 'लोक' शब्द के लिए 'जन' का भी प्रयोग होता है।[15]

डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि 'लोक' शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और गाँव में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं। ये नगर में परिष्कृत, सुसंस्कृत समझने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं उत्पन्न करते हैं।[16] अतः 'लोक' साधारण जन समाज है, जिसमें भू-भाग पर फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित हैं। समाज में नागरिक और ग्रामीण दो भिन्न संस्कृतियों का प्रायः उल्लेख किया जाता है पर 'लोक' दोनों में विद्यमान है।[17]

'लोक' हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य तथा वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरुप है। लोक कृत्स्ना ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है।''[18]

डा. कृष्ण देव उपाध्याय के अनुसार 'लोक' शब्द की परिभाषा इस प्रकार हैः-

''आधुनिक सभ्यता से दूर, अपने प्राकृतिक परिवेश में निवास करने वाली आशिक्षित एवं असंस्कृत जनता को 'लोक' कहते हैं। जिनका आचार-विचार एवं जीवन परम्परा युक्त नियमों से नियंत्रित होता है। इससे स्पष्टतया ज्ञात होता है कि जो लोग सुसंस्कृत और परिष्कृत लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए अपनी पुरातन स्थिति में वर्तमान हैं उन्हें लोक की संज्ञा प्राप्त है।''[19] अतः लोक का अर्थ हुआ 'पहचान करने वाला' वह सारा जन समुदाय जो इस कार्य को सम्पूर्ण करता है, 'लोक' कहलाता है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में 'लोक' शब्द का प्रयोग, प्राचीन ग्रन्थों की भाँति विभिन्न अर्थों के रूप में हुआ है। आधुनिक परिवेश में लोक शब्द का प्रयोग, सामान्यतः सामान्य जनता, समाज, भू-भाग, पृथ्वी, जनसमूह व क्षेत्र विशेष से किया जाता है। प्राचीन शास्त्रकारों की भाँति आधुनिक विद्वानों ने भी लोक शब्द के विभिन्न अर्थ बताए हैं। मुकन्द लाल श्रीवास्तव के अनुसार 'लोक' शब्द का अर्थ सामान्य जनता, भू-भाग तथा प्रजा आदि है।[20] डा. कृष्ण देव उपाध्याय लिखते हैं कि ''जो लोग संस्कृति या परिष्कृत वर्ग से प्रभावित न होकर अपनी पुरातन स्थितियों में रहते हैं, वे लोक कहलाते हैं।''[21] वास्तव में लोक शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है 'लोक' के अन्तर्गत पृथ्वी, पृथ्वी पर निवास करने वाले सभी प्राणी आ जाते हैं।

पूर्णिमा श्रीवास्तव के अनुसार ''हमारा ग्रामीण समाज लोक का महाप्राण है और ग्रामीण संस्कृति लोक का प्रतिनिधित्व सा करती हुई दिखाई देती है। एक विश्लेषण के रूप में इस शब्द का अर्थ ग्राम्य या जनपदीय समझा जाता है।''[22] वैसे लोक शब्द ऐसे स्थान की ओर भी ईंगित करता है जहाँ विशेष प्रकार के असभ्य तथा अशिक्षित प्राणी निवास करते हैं। जीव लोक के अन्तर्गत संसार के सभी प्राणी आ जाते हैं जो पृथ्वी पर पारम्परिक अवस्था में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। देव लोक में देवताओं का वह स्थान जहाँ देवता निवास करते हैं, इसे भी अलग लोक की संज्ञा दी जा सकती है। 'मनुष्य लोक' के अन्तर्गत जहाँ मनुष्य जाति निवास करती है आदि। डा. श्री राम शर्मा के अनुसार - 'लोक' शब्द अशिक्षित, अर्धशिक्षित, अर्धसभ्य तथा असभ्य वर्ग के लिए प्रयुक्त किया जाना चाहिए। चाहे वे ग्रामीण क्षेत्र में निवास करते हों या नगरीय क्षेत्र में।[23]

उक्त सभी विद्वानों ने 'लोक' शब्द को भिन्न-भिन्न रूपों में परिभाषित किया है तथा जन मानस को 'लोक' के अन्तर्गत माना है जो साक्षरता, सभ्यता कृत्रिमता परिष्कार तथा बनावट इत्यादि से अछुता हुआ सामुदायिक मनोवृतियों के अवशेषों से परिपूर्ण है। कहने

Hill Quest: A Multidisciplinary, National Peer-Reviewed Journal
ISSN 2454-3144 | Volume 10, Issue 01, January-June 2023
http://hillquest.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2023

का तात्पर्य है कि लोक शब्द का प्रयोग साक्षेप है। प्राचीन काल से चले आ रहे सामाजिक , सांस्कृतिक, धार्मिक संस्कारों, लोक विश्वासों, लोक व्यवहार रीति-रिवाजों, प्रथा प्रचलनों शकुन-अपशकुन, देवी-देवताओं के प्रति ये लोग आस्थाशील होते हैं।

उपरोक्त सभी प्रसंग मण्डी अंचल के लोक मानस पर व्यापक रूप से ठीक बैठते हैं। यहाँ का स्थानीय ''लोक'' प्राकृतिक रूप-लावण्य से पूर्णतया सम्पृक्त है। यहाँ पर प्रायः हर जाति एवं व्यवसाय के लोग बसे मिलते हैं। ये लोग अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति पारस्परिक सहयोग भावना से करते हैं। यहाँ के लोग स्वभाव में सरल, मृदु-भाषी , हास्य-विनोदी तथा निश्छलता से दूर हैं। अतः 'लोक' शब्द वास्तव में गाँव के जन-जीवन की स्पन्दनों का यथार्थ प्रतिबिम्ब है। मण्डी अंचल की आधुनिक स्थिति को देखते हुए उपर्युक्त लोक शब्द का सम्बन्ध गाँव व देहातों में वास करने वाले उस समुदाय से जोड़ना अधिक उपयुक्त होगा जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बहार कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में निवास करते हैं तथा जिनका व्यावहारिक ज्ञान पुस्तकों पर आधारित न होकर परम्परा द्वारा प्रतिष्ठित है।

लोकनृत्य की परिभाषा एवं उत्पति:

जब मनुष्य अति प्रसन्न होकर अपनी प्रसन्नता को प्रकट करने के लिए अपने अंग-प्रत्यंगों को हिला-हिला कर झूमने लगता है तो उस स्थिति को नृत्य की संज्ञा दी जा सकती है। लोक में प्रचलित लोकनृत्यों को लोकनृत्य कहा जाता है। लोकनृत्य का एकमात्र उद्देश्य अपनी हार्दिक प्रसन्नता को प्रकट करना है। डा. सत्येन्द्र के अनुसार ''लोकनृत्य मनुष्य की सम्पूर्ण समग्र अभिव्यक्ति है। नख से शिख तक के अवयव इसमें मिलते हैं।''24 यहाँ प्रचलित लोकनृत्यों में यहां के लोगों का आचार-व्यवहार, आदान-प्रदान चरित्र आदि सभी बातों का व्याख्यान मिलता है।

नृत्य की उत्पति में प्राकृतिक वातावरण का विशेष योगदान रहा है। यदि यह कहा जाए कि प्रकृति से आदि मानव ने नृत्य कला सीखी तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। प्राकृतिक माध्यम द्वारा नृत्य की प्रेरणा मिलने से सम्बन्धित मृदुला बिहारी ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि लोकनृत्य की परम्परा का प्रयोग मानव ने प्रकृति की प्रेरणा से अनजाने में अपनी कलात्मक प्रवृतियों के प्रकाशन के लिए किया होगा। ''भाषा के अभाव में मन के भावों को व्यक्त करने के लिए उसने अपने अभिनय का सहारा लिया होगा और अभिनय से ही अंग परिचालन और भावाभिव्यक्ति की परिपाटी बन गई होगी।''[25] इस सम्बन्ध में डा. यादवेन्द्र शर्मा का कहना है कि ''प्राकृतिक सम्पदा के सौन्दर्य आकर्षण से मुग्ध होकर मानव के हृदय में थिरकने की इच्छा हुई और समय की गति के साथ सुर और ताल के माध्यम से मानव के पाँव नृत्य करने लगे तथा भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम नृत्य बना।''[26]

मण्डी अंचल के लोकनृत्यों से सम्बन्धित जानकारी शोधार्थी को रियासती काल तक की ही प्राप्त हो सकी है। इससे पूर्व यहां प्रचलित लोकनृत्यों के विषय में कोई प्रामाणिक साहित्य उपलब्ध नहीं है। रियासती काल में यहां के जनपदों में विभिन्न प्रकार के लोकनृत्यों का उल्लेख मिलता है तथा लोकनृत्यों को राजकीय संरक्षण भी प्राप्त था। 765 ई. में राजा 'वीरसेन' द्वारा ''लोकनृत्यों के प्रचार एवं प्रसार हेतु विशेष आचार सहिंताएं बनाई गईं थीं तथा विशेष परिधान निश्चित किया गया था।''[27] रियासती काल तक मंडी अंचल की लोकनृत्य शैलियों को राजकीय संरक्षण प्राप्त होने के फलस्वरूप खूब प्रचारित, प्रसारित एवं प्रदर्शित किया गया तथा इसी कारण स्थानीय लोक नर्तकों व नर्तकियों को भी बहुत प्रोत्साहन मिला। मण्डी अंचल में प्रचलित लोकनृत्यों से सम्बन्धित जानकारी यहां के बेडा नामक समुदाय के वृद्ध कलाकारों से प्राप्त हुई है।

वर्तमान समय में मण्डी अंचल में लगभग सभी समुदायों एवं वर्गों द्वारा लोकनृत्य किया जाता है। लोकनृत्य उत्सव, पर्व, विवाहादि पावन संस्कार, सामाजिक चेतना एवं मानव के अटूट सम्बन्ध के परिचायक होते हैं। इन लोकनृत्यों में यहां के लोक जीवन के स्वभाव, अंग संचालन में एक आकस्मिकता, कठोर मुद्रा से परिपूर्ण नृत्यों का अविकल रूप तथा धार्मिक, सामाजिक संस्कारों की छाप मिलती है।

Hill Quest: A Multidisciplinary, National Peer-Reviewed Journal
ISSN 2454-3144 | Volume 10, Issue 01, January-June 2023
http://hillquest.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2023

लोकनृत्यों का लोक जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध होता है। मांगलिक कार्यों जैसे पवित्र संस्कारों के समय लोकनृत्यों को किया जाता है। लोकनृत्यों की उत्पत्ति विशेषकर गांव में ही होती है। ''लोकनृत्यों में नर्तकों की थिरकन, ठुमकने या झूम-झूम कर नाचने में प्रचलित जो उमंग और खुशी झरती है, वह अपने आप में अद्वितीय है।''[28]

श्शारीरिक लय प्रधान क्रियाओं के साथ आनन्द एवं सौन्दर्य की अभिव्यक्ति जिस सामुहिक रूप से होती है, उसे लोकनृत्य कहते हैं। लोकनृत्यों का मूल स्त्रोत हमारी लोक संस्कृति है। जिसे स्थान और काल की दूरी छिन्न-भिन्न नहीं कर सकती। लोकनृत्य परस्पर प्रेम का अंकुर उभारते हैं।[29]

लोकनृत्य सांस्कृतिक, धार्मिक एवं सामाजिक परम्पराओं को प्रकट करते हैं। मानव की गहरी अनुभूति भरी उल्लासमयी लहरों का साकार रूप लोकनृत्यों में देखने को मिलता है। लोकनृत्य लोक कला केा आनन्दमय बनाकर लोक संस्कृति को सुरक्षित रखते हैं।

मण्डी जनपद में प्रचलित लोकनृत्य भी धार्मिक परम्पराओं और कलात्मक गुणों का सुन्दर सामजस्य प्रस्तुत करते हैं। पहाड़ी लोकनृत्यों में जहां उनके लयात्मक गुणों और सौम्य स्वभाव के कारण आकर्षण है, वहां उनमें प्रयुक्त बहुरंगी वस्त्राभूषण और सज्जा परिधानों ने इनके बाह्य कलेवर को अति कलात्मक और दैवी बना दिया है। यहां प्रत्येक क्षेत्र के नृत्य के लिए अपना अलग परिधान है जिससे प्रत्येक स्थान विशेष के साथ लोकनृत्य को पहचाना जा सकता है।

''लोकनृत्य सभी कलाओं में अति प्राचीन हैं। लोकनृत्य लोक कला का ही विशिष्ट रूप है, जिसमें ललित कलाओं के अनेक रूप समाए हुए हैं। लोकनृत्य एवं लोक संगीत का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। नृत्य और संगीत विश्व की आदिम कलायें है।''30 मण्डी जनपद में प्रचलित लोकनृत्यों में प्रयुक्त लोकगीतों का भी यहां की मानव संस्कृति से घनिष्ट सम्बन्ध है। यहां के नृत्य गीत भी उतने ही प्राचीन हैं जितनी कि यहां की संस्कृति ।

लोक जीवन की प्रत्येक दिशा नृत्य में व्याप्त है। प्रातः काल सूर्य नृत्य करता हुआ निकलता है। हवा के बबंडर भी यदा-कदा नाच उठते हैं। घर के बाहर और छतों पर मयूर नृत्य करता है। सांप , बन्दर और भालू भी संगीत की मधुर स्वर लहरियों में नृत्य करते हैं। निर्जीव पदार्थों तक में नृत्य देखने में आता है। ''लोकजीवन में कठपुतलियां नाचती हैं। ये सभी प्रकार के नृत्य, लोकनृत्यों के अन्तर्गत आते हैं। लोकनृत्य जीवन की आत्मानुभूति है।''[31]

अतः मण्डी अंचल के लोकनृत्यों में प्रयुक्त लोकगीतों तथा लोकवाद्यों के सांगीतिक अध्ययन को विभिन्न शोध प्रणालियों द्वारा पूरा किया गया है इन सभी माध्यमों के अध्ययन द्वारा शोध विषय से सम्बन्धित साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन के उद्देश्यों का प्रतिपादन कर बुनियादी मान्यताओं का विवरण दिया गया है। वास्तव में मण्डी अंचल के लोकनृत्य, लोक जीवन की गति से सम्बन्धित हैं। यहाँ के लोकनृत्य किसी आदर्श अथवा प्राणानुभूति को व्यक्त न कर जीवन के उल्लास को भी व्यक्त करते हैं। यही कारण है कि वे इस क्षेत्र के जीवन की गति के आदर्श प्रतीक हैं। इन्हीं लोकनृत्यों ने आत्मसमप्रण कर शास्त्रीय नृत्य को जीवन देकर हमारी कला को सुरक्षित रखा है तथा जीवन को सुसंस्कृत कर दिया है।

लोकनृत्यों का विकास:

विश्व का कोई भी भाग ऐसा नहीं है जहां लोकनृत्यों का प्रचलन न हो। जिस तरह मात्र छः कि.मी. की दूरी के अन्तर पर भाषा, बोली एवं संस्कृति बदल जाती है उसी प्रकार लोकनृत्यों में प्रयुक्त लोकगीतों में भी परिवर्तन आ जाता है। किन्तु उल्लास और उमंग की अभिव्यक्ति सभी लोकनृत्यों में समान रूप से होती है।

लोकनृत्य लोकपरक मनोरंजन विधा है। लोक-कला की भान्ति यह भी स्वच्छंद तथा परम्परा प्रवाहित है। देश-काल पात्र आदि के आधार पर इनके कई रूप प्रचलित हैं। लोकनृत्यों में जनमानस की ऐतिहासिक एवं सामाजिक परम्परा तथा विकास के दर्शन होते

Hill Quest: A Multidisciplinary, National Peer-Reviewed Journal
ISSN 2454-3144 | Volume 10, Issue 01, January-June 2023
http://hillquest.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2023

हैं। जनजातीय जीवन तथा बर्फीले पहाड़ों के तो ये प्रमुख अंग हैं। इनके अभावग्रस्त एवं कटुजीवन को संगीत तथा नृत्य ही सरस, सुखद तथा मस्त बनाते हैं। नृत्य इनकी सहनशीलता, आमोद-प्रमोद तथा विनोदी प्रवृति के प्रतीक हैं। मण्डी अंचल नृत्यों की धरती है इसके नृत्य मनोरंजन प्रधान हैं। यहां के उत्सव मेले तथा संस्कार समूह नृत्यों तथा लोकगीतों से सम्पन्न होते हैं। इन नृत्यों में स्थानीय इतिहास, सांस्कृतिक परम्पराएं एवं लौकिक मान्यताएं प्रतिबिम्बित मिलती हैं।

''हिमाचल प्रदेश के सम्पूर्ण भाग में लोकनृत्य प्रचलित हैं। हिमाचल के लोकनृत्य सरल, स्वाभाविक, विविध व मनोहारी हैं। धार्मिक भावनाओं से अनुप्रणित और कलात्मक गुणों से अंलकृत मण्डी अंचल के लोकनृत्य अत्यन्त मनोहारी हैं। यहाँ के अधिकांश नृत्य सामुहिक हैं।''[32] इन नृत्यों में आकर्षक लय के अतिरिक्त, नर्तक दल का माला में बन्धने का एक विशेष ढंग तथा पग व अंग संचालन का निश्चित क्रम अदभुत आकर्षण पैदा करता है। यहां प्रचलित लोकनृत्य सिखाए नहीं जाते बल्कि आने वाली नई पीढ़ी नृत्यों को देखकर ही अनुसरण करना प्रारम्भ कर देती है।

मण्डी अंचल के लोकनृत्यों तथा लोकगीतों के विकास में मेलों और उत्सवों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रत्येक उत्सवों में लोकनृत्यों को देखा जा सकता है। यहां का शिवरात्री उत्सव अन्तर्राष्ट्रीय उत्सव बन चुका है। इस मेले में मण्डी जनपद के प्रत्येक लोकनृत्य देखने को मिलते हैं। इन लोकनृत्यों में प्रयुक्त लोकगीतों का अपना एक अलग महत्त्व है।

इन नृत्यों के माध्यम से मानवीय मनोभावों की अभिव्यक्ति जिस प्रकार प्राप्य है उतनी दूसरी जगह शायद ही सुलभ हो। इस क्षेत्र की संस्कृति ने प्राकृतिक दृष्टि से यहां के जन जीवन को अतीत से आज तक प्रभावित किया है। मंडियाली लोकनृत्य का उद्भव भी सामाजिक परिस्थिति की प्रतिक्रिया का परिणाम है। यही कारण है कि इन नृत्यों में मैदानी भागों के नृत्यों की चंचलता तथा उच्छृंखलता का समावेश है, वहां इनमें पर्वतीय क्षेत्रों के लोकनृत्यों की कोमल लास्यपूर्ण उल्लासित भावनाओं के दर्शन भी होते हैं। राजा वीरसेन के शासनकाल में मंडियाली लोकनृत्यों को राजकीय संरक्षण मिलना आरम्भ हुआ। अतः रियासती काल से मंडियाली लोकनृत्य विकास की ओर अग्रसर हुआ। ''बांठड़ा'' लोकनाट्य की परम्परा ने इन नृत्यों के विकास प्रचार तथा प्रसार में महत्त्वपूर्ण येागदान दिया। रियासती युग में ''बाठंडा'' लोकनाट्य के माध्यम से लोकानुरंजन लोक कलाओं का प्रसार तथा शिक्षा का प्रचार किया जाता था। इसमें भाग लेने वाले प्रत्येक कलाकार को मंच-प्रवेश के समय तथा वापिस साज श्रृंगार कक्ष जाते हुए नृत्य की विशेष मुद्राओं के साथ आना-जाना पड़ता था जो अनिवार्य माना जाता था, तथा नृत्य की दृष्टि से निजी महत्त्व रखता था। उपर्युक्त वर्णन से यही निष्कर्ष निकलता है कि नृत्य कला का इतिहास उतना ही पुराना माना जा सकता है जितना कि मानव जाति, अर्थात् मानव और नृत्य का जन्मजात सम्बन्ध रहा हैं।

लोकनृत्यों की परम्पराएं:

लोकनृत्यों की परम्परा भारत वर्ष में अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय नृत्य का प्रारम्भिक रूप विश्व के प्राचीनतम वांड्मय वेदों में मिलता है 'यजुर्वेद' में सोमयाग के समय नृत्य का स्पष्ट वर्णन मिलता है। 'ऋग्वेद' में तो नृत्य का पूरा पिट पाक हुआ है, क्योंकि ऋग्वेद में वरुण, इन्द्र मारूति आदि प्राकृतिक देवताओं की पूजा नृत्य से आरम्भ होती है, वैदिक मंत्रों का उच्चारण भी अंग-संचालन के साथ होता है। इस तरह 'ऋग्वेद में नृत्य करती हुई एवं धूल उड़ाती हुई नर्तकियों का विशद् वर्णन मिलता है। वाल्मीकि रामायण में राम जन्म के शुभ अवसर पर गन्धर्वों द्वारा गायन और अप्सराओं द्वारा नृत्य करने का उल्लेख मिलता है। मोहन जोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में प्राप्त नृत्य करती हुई, नारी प्रतिमाओं एवं नर्तकियों के आधार पर यह प्रमाणित हो चुका है कि भारतीय नृत्य का जन्म कम से कम ईसवी सन् के छः-सौ वर्ष पूर्व हो चुका था, इस तरह वैदिक युग में कलाकारों को कला के सौन्दर्य को मुद्राओं द्वारा उभारने का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो चुका था। दंत कथा के अनुसार त्रिपुरासुर का वध करने के लिए भगवान शंकर ने वीर रस प्रधान नृत्य किया और जब राक्षस का वध हो गया तो उसके हर्ष में पार्वती ने लास्य नृत्य किया। ताण्डव नृत्य पुरुषों के लिए उपयुक्त है, क्योंकि उसमें

Hill Quest: A Multidisciplinary, National Peer-Reviewed Journal
ISSN 2454-3144 | Volume 10, Issue 01, January-June 2023
http://hillquest.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2023

कुछ ऐसे अंगहारों का प्रदर्शन किया जाता है जो स्त्री द्वारा किये जाने पर असौन्दर्यपूर्ण प्रतीत होता है। ''स्त्री श्रृंगार और कोमलता की प्रतीक है। इस लिए उसके द्वारा केवल लास्य नृत्य का प्रदर्शन ही लोकरंजक होता है।''33

''संगीत रत्नाकर में जगजननी पार्वती ने वाणासुर की कन्या उषा को लास्य नृत्य की शिक्षा दी, उषा का विवाह अनिरूद्ध से हुआ। उषा ने द्वारिका की महिलाओं को लास्य नृत्य की शिक्षा दी, उन लोगों ने सौराष्ट्र की महिलाओं को सिखाया, वहां से विभिन्न जनपदों की नारियों में लास्य नृत्य का प्रचार एवं प्रसार हुआ। फलतः लास्य लोक में प्रतिष्ठित हो गया। उक्त मत शैव मत में प्रचलित है।''[34]

मानव भावनाशील प्राणी है तथा उसके मनोभाव अभिव्यक्ति का मार्ग ढूंढते हैं और इसी कारणवश अनेकों नृत्यकलाएं व शैलियां जन्म लेती हैं, यही अनेक नृत्य कलाएं एवं शैलियां जब एक परिवार, वर्ग अथवा समुदाय द्वारा अपना ली जाती हैं तथा परम्परानुसार सामयिक संशोधनों व परिवर्तनों के साथ-साथ दोहराई जाती हैं तब वह उस वर्ग समुदाय, जाति अथवा समुदाय की परम्परागत नृत्य शैलियों का रूप धारण कर लेती है। ऐसी ही स्थिति मण्डी अंचल में प्रचलित विभिन्न लोकनृत्यों की शैलियों में भी परिलक्षित होती है। मण्डी अंचल के युवक-युवतियां, छोटे-2 बच्चे, नौजवान तथा वृद्ध भी नृत्यों को देख कर आनन्दित हो उठते हैं तथा परिपक्व लोक नर्तकों के नृत्यों का अनुसरण करना प्रारम्भ कर देते हैं। कालान्तर में छोटे-2 कलाकार भी उच्चकोटि के नर्तक बन कर यहाँ के पारम्परिक नृत्य कला के संरक्षक बन जाते हैं। लोकनृत्यों में जहां एक ओर आदिकालीन असभ्य एवं अपरिपक्व लोगों के आधारभूत तत्त्वों को स्थापित किया गया, वहां भाषा तथा संस्कृति के साथ-साथ इसका परिष्कृत रूप भी उभरने लगा। मध्यकाल में मंडी अंचल के लोकनृत्यों का स्वतन्त्र स्वरूप स्थापित हुआ। मण्डी में पंजाब राजस्थान, कुल्लू तथा लाहौल-स्पिति से आये लोग यहां बस गये, जिससे यहां ऐसे लोकनृत्यों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने विभिन्न प्रदेशों के सांस्कृतिक स्वरूपों को भी अंगीकार किया यही कारण है कि जहां इन नृत्यों में मैदानी भागों के नृत्यों की चंचलता तथा उच्छृंखलता का समावेश हुआ है। वहां इनमें पर्वतीय क्षेत्रों के लोकनृत्य की कोमल लास्यपूर्ण तथा उल्लासित भावनाओं के दर्शन भी मिलते हैं।[35]

मण्डी अंचल में प्रत्येक स्त्री-पुरुष तथा बच्चों को नृत्य से विशेष लगाव है। नृत्य में अनेक इच्छुक स्त्री-पुरुष तथा बच्चे बढ़-चढ़ कर भाग लेते हैं। मेले उत्सवों, त्योहारों तथा अनेक संस्कारों में अनेक प्रकार के लोकनृत्य किये जाते हैं। यहां के जनपदों में विशेषतया जनजातीय क्षेत्रों में लोकनृत्य का प्रचलन अन्य शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक है। इसका मुख्य कारण यह है कि लोकनृत्य इन जनपदों के लोगों का प्रमुख अंग है। इन लोगों के कोई भी धार्मिक संस्कार, मेले पर्व त्योहार तथा समारोह तब तक सम्पूर्ण नहीं समझे जाते जब तक इनमें नृत्य का आयोजन न किया गया हो। संस्कृति, साहित्य, सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति आदि का सुन्दर परिचय इन लोकनृत्यों में मिलता है। इन लोकनृत्यों में यहां के समाज का नख से शिख तक का वर्णन बड़े ही सुन्दर शब्दों में मिलता है।

लोकनृत्यों का सांगीतिक महत्त्व एवं विशेषताएं:

मण्डी अंचल में प्रचलित लोकनृत्यों के साथ लोकगीतों की संगति इन लोकनृत्यों को अधिक आर्कषक बनाती है। निःसन्देह लोकनृत्य और लोकगीत का जन्म साथ-साथ संघर्ष और श्रम साधनों के अवसर पर दिखाई जाने वाली भावमयी मुद्राओं के उन चरणों में हुआ, जब जीवन का सौन्दर्य जाग उठा और गीत फूट पड़े। चिरकाल के समान उदय और प्रयोजन के कारण, मण्डी अंचल के लोकनृत्य और लोकगीत अभिन्न रहे हैं, और पर्वतीय सामाजिक जीवन को सचित्र सजीव और प्रेरित करते हुए लोकनृत्यों से विभूषित हैं। इनका सरल प्रवाहमान संगीत , नृत्य की ताल लय को कला सौष्ठव प्रदान करता है और दर्शक की आत्मा मन्त्रमुग्ध सी आलौकिक आनन्द का रसास्वादन करने लगती है।

Hill Quest: A Multidisciplinary, National Peer-Reviewed Journal
ISSN 2454-3144 | Volume 10, Issue 01, January-June 2023
http://hillquest.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2023

मण्डी अंचल के लोकनृत्यों में प्रयुक्त लय और स्वर संगति में लोकवाद्यों की अहम् भूमिका रहती है। लोकनृत्यों के लिए ताल वाद्यों का होना परमावश्यक होता है। लोकनृत्यों में लोकवाद्यों तथा लोकगीतों की आवश्यकता समान रूप से होती है। नृत्य का प्राण ही ताल है। प्रथम लोकवाद्यों द्वारा लोकनृत्यों में प्रयुक्त लोकगीतों की संगत की जाती है, अर्थात लोकवाद्य यंत्रों पर लोकधुनें बजाई जाती हैं। जिनके आधार पर लोकनृत्य किया जाता है। इसी कारण मण्डी अंचल में प्रचलित लोकनृत्यों में लयात्मकता का पुट अधिक दिखाई देता है। यहां के जनपद में नर्तक हो या गायक कलाकार दोनों ही नृत्य को प्रस्तुत करते समय एकाग्रता से नृत्य करते व लोकगीत गाते हैं। यहां के लोकनृत्य एक योजनाबद्ध ढंग से प्रस्तुत किये जाते हैं। इन लोकनृत्यों की एक मुख्य विशेषता यह है कि इन पारम्परिक लोकनृत्यों को देख कर किसी भी अपरिचित व्यक्ति का मन नाच उठने को कर जाता है। इस प्रकार इन लोकनृत्यों में किसी भी व्यक्ति को आकृष्ट करने का विशेष गुण है।

यहां के नृत्य लोकगीतों में अधिकतर हर्षोल्लास की अभिव्यक्ति अधिक रहती है। इन लोकगीतों में शास्त्रीय नृत्यों की भांति विभिन्न नियमों का पालन नहीं किया जाता है, लेकिन इतना अवश्य है कि लोक नर्तक एवं नर्तकियां नृत्यगीतों के बोलों को सुनकर शारीरिक भाव भंगिमाऐं प्रदर्शित करतें हैं। यहां के लोकनृत्य सरल एवं साधारण हैं। मेलों और उत्सवों में जिस उत्साह से लोकवाद्यों की लय पर लोकनृत्य किये जाते हैं, उसी उत्साह से विवाह शादियों में लोकवाद्यों के सुरतालों पर बाराती नृत्य कर झूमते हैं। इस जनपद में प्राचीनकाल से आनन्द और उत्साह में नृत्यों का संचालन लोकवाद्य ही कराते आये हैं। लोकवाद्य ही लोकनृत्यों में लय एवं स्वर को नियंत्रित रखते हैं, संगीत को आकर्षक बनाते है तथा नर्तकों की पद्गति को सुव्यवस्थित करते हैं।

लुड्डी लोकनृत्य एंव लुड्डी लोकगीत:

''लुड्डी लोकनृत्य'' मण्डी अंचल का विशुद्ध, महत्त्वपूर्ण तथा बहुचर्चित नृत्य है। 'लुड्डी' शब्द लुड्ड या लुडना आदि शब्दों का अपभ्रंश शब्द है। वास्तव में लुड्डी का अर्थ आनन्द के क्षणों में नृत्य द्वारा भाव व्यक्त करना माना जाता है तथा प्रसन्नता से फूले न समाना, हर्ष मनाना, दिल बाग-बाग हो जाना तथा लुढ़कना आदि भी इसी का पर्याय माना जाता है। 'लुड्डी पाणा' अर्थात् लुड्डी डालना या मौज मस्ती करना आदि इस लुड्डी शब्द को मुहावरे के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। लुड्डी लोकनृत्य को ध्यानपूर्वक देखने से ज्ञात होता है कि इस नृत्य का भाव सचमुच ही लुड़कने से है। इस नृत्य पर किसी अन्य लोकनृत्य का प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। इस लोकनृत्य को वृताकार में किया जाता है। प्रत्येक नर्तक या नर्तकी स्वच्छन्द व स्वतन्त्र रुप से नृत्य करता है व एक दूसरे पर निर्भर नहीं रहता। अपनी-अपनी भाव भंगिमाओं को प्रदर्शित करता हुआ प्रत्येक नर्तक आगे बढ़ता रहता है। यह आवश्यक नहीं कि सब नर्तकों व नर्तकियों के भाव एक दूसरे के अनुरूप हों लेकिन पद संचालन व हस्तचालन की क्रियाएं एक समान प्रतीत होती हैं।

लुड्डी लोकनृत्य में जिन लोकगीतों का प्रयोग किया जाता है उन्हें लुड्डी गीत कहते हैं। लुड्डी लोकनृत्य में प्रयोग किए जाने वाले लोकगीत एक या दो पंक्ति के होते हैं तथा इन्हीं पक्तियों को बार बार दोहराया जाता है। ''लुड्डी'' लोकनृत्य ज़िला मण्डी के अन्य लोकनृ की भांति ताल प्रधान है। इस लोकनृत्य की लय विलम्बित से प्रारंभ होकर धीरे-धीरे मध्य लय तक पहँचाई जाती है तत्पश्चात् द्रुत लय में प्रवेश किया जाता है। लोकगायक व गायिकाएं अपनी सुविधानुसार लोकगीत को लय के साथ बदलना चाहें तो बदल सकते हैं अन्यथा एक ही लुड्डी गीत को भी तीनों लयों में प्रस्तुत करने का पारम्परिक प्रावधान है। लुड्डी लोकनृत्य में अधिक सजने संवरने की आवश्यकता नहीं होती बल्कि लोक कलाकार अपनी दैनिक प्रयोग में लाई जाने वाली वेषभूषा में ही नृत्य करते हैं। किसी विशेष अवसर पर नये सिलाए हुए परिधान का प्रयोग किया जाता है। यह लोकनृत्य मेलों, त्योहारों तथा विवाह आदि अवसरों पर विशेष रूप से किया जाता है। इस लोकनृत्य में लोकगायकों के साथ स्वराधार के लिए शहनाई वादन

Hill Quest: A Multidisciplinary, National Peer-Reviewed Journal
ISSN 2454-3144 | Volume 10, Issue 01, January-June 2023
http://hillquest.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2023

किया जाता है तथा लय देने के लिए ढोल, नगाड़ा, ढोलक, ताशा व डफाहल आदि ताल वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। लुड्डी नृत्य में गाये जाने वाले लोकगीतों के उदाहरण इस प्रकार हैं-

उड़ परदेशिया भौरा हो, आसा पूजणा ठाकुर द्वारा हो।

उड़ परदेशिया भौरा हो, कदी भी ना देखणा सोरा हो।

सरलार्थ:-

उपरोक्त लुड्डी लोकनृत्य गीत में एक नव विवाहित यौवना लुड्डी नृत्य करते हुए अपने पति के लिए कह रही है उसका पति जो की विदेश में कार्यरत है कि तुम उड़ कर अर्थात् जल्दी घर आ जाओ हमने अपने ग्रामीण देवता की पूजा करनी है। मैं घर में अकेले रह कर तंग आ गई हूँ।

भावार्थ:-

इस लुड्डी लोकनृत्य गीत में एक नवविवाहिता यौवना लुड्डी नृत्य करती हुई कामना करती है कि हे प्रियतम ! तुम विदेश से शीघ्र लौट आओ ताकि हम मिलकर ठाकुर द्वारा (मंदिर) जा सकें और अपनी मनोकामनाएं पूर्ण करने में सक्षम हो सकें। नायिका प्रियतम से मिलने के पश्चात् ससुराल में अकेले नहीं रहना चाहती। इस लिए प्रियतम से शीघ्र मिलने की अकांक्षा व्यक्त करती है। प्रस्तुत

लोकगीत की स्वरलिपि निम्न है:-

सारे उड़	रेरे पर	रेग देशि	रेसा याऽ	रेम भौंऽ	मप राऽ	पसां होऽ	नीध आसां
पमेप पुजऽ	गरे णाऽ	सानीसा ठाऽऽ	नीध कर	–ग ·द्धा	–रे ·रा	सा– होऽ	पम आसां
पप पुज	पप णाऽ	–सां ·हो	नीधप ···	प्प पुज	पप णाऽ	–सां ·हो	नीधप ···
पप पुज	पप णाऽ	पप ठाऽ	गसा कर	–ग ·द्धा	–प ·रा	सांसां होऽ	नीध आसां
गग पुज	गसा णाऽ	गम ठाऽ	धप कर	–ग ·द्धा	–रे ·रा	सा– होऽ	सा– ··

लोकगीत की शेष पक्तियाँ इसी क्रम से गाई जाएंगी।

उपरोक्त लुड्डी लोकनृत्य गीत में रे ग रे सा रे म प सां नी ध, प म प ग रे सा नी सा नी ध तथा ग रे सा स्वर समुदाय राग पीलू को ईगित करते हैं। उक्त लुड्डी लोकनृत्य गीत में ताल कहरवा के सदृश लोकताल का प्रयोग हुआ है।

हरेया पराला रेया मांजरुआ

कलेयाँ रेहणा नंई वे तेरी सो कलेयाँ रेहणा नंई .....

Hill Quest: A Multidisciplinary, National Peer-Reviewed Journal
ISSN 2454-3144 | Volume 10, Issue 01, January-June 2023
http://hillquest.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2023

आगण चिफला पया भलिए

कलेयाँ रेहणा नंई वे तेरी सो कलेया रेहणा नंई .....

सरलार्थ:-

उक्त लुड्डी लोकनृत्य गीत में नायिका हरे घास की चटाई (बैठने के लिए बनाई गई चटाई) से अपने मन की व्यथा गाकर सुना रही है कि ऐ मkaजरु अब मेरे से अकेले नहीं रहा जाता-तेरी कसम है-अकेला रहना संम्भव नहीं है। वर्षा ऋतु में आंगन भी फिसलन भरा हो गया है। ऐसे समय में अकेले रहना कठिन है-अब मैं अकेले नहीं रह सकती।

भवार्थ:-

इस लोकनृत्य गीत में नायिका अकेलेपन की पीड़ा झेल रही है। वह नायक के वियोग में तड़प रही है। वर्षा ऋतु का आगमन उसकी ज्वाला को अधिक प्रज्वलित कर रहा है। इस लोकगीत में वियोग श्रृंगार का मार्मिक चित्रण हुआ है। उक्त लोकगीत की स्वरलिपि अग्रलिखित है:-

प ह	प रे	—प ·यो	सां प	नी रा	ध ल	—प ·रे	म या
ग मा	ग ·	सा ·	ग ज	ग्म रूऽ	नीध ··	पमे आऽ	प ·
ग क	ग ले	ग यां	रे ·	स रे	नीसा ··	ध़— णाऽ	नीध ··
सा नं	सा ई	सा •	सा ·	र ते	र री	म— सोऽ	गम ··
ग क	ग ले	ग यां	रे ·	स रे	नीसा ··	ध— णाऽ	नीध ··
सा नं	सा ई	— ·	— ·	— ·	— ·	— ·	— ·

लोकगीत के शेष चरण इसी क्रम से गाये जाएंगे।

उपरोक्त लुड्डी नृत्य गीत में प सां नी ध प म ग ग , ग म नी ध प म प तथा ग रे सा ऩी सा ध् ऩी सा स्वर समुदाय राग पीलू के स्वरूप को व्यक्त करते हैं। यह लोकगीत कहरवा ताल के समान आठ मात्राओं के लोक ताल में निबद्ध है।

खपरूये लेया बणवास, खपरी जऱी मरदी।

होछे भाउवा तोते रामा लो, तेरा पिंजरा पुराणा तेरी सो।

पुराणा देणा ढिंगणे जो, नवां होर लेई आउणा तेरी सो।

खपरूये लेया बणवास, खपरी जऱी मरदी।

Hill Quest: A Multidisciplinary, National Peer-Reviewed Journal
ISSN 2454-3144 | Volume 10, Issue 01, January-June 2023
http://hillquest.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2023

सरलार्थ:-

इस लुड्डी लोकनृत्य गीत में एक वृद्ध औरत अपने विरह का वर्णन करते हुई कहती है कि मेरा घर वाला (पति) व्यापारी है। व्यापार कार्यकलापों के कारण मेरे सुहाग को इधर- उधर भागना पड़ता है। हमने कभी भी आपस में अपने सुख-दुःख की बातें चैन से नहीं की। इस कारण मैं विरह की अग्नि में धीरे-धीरे जल रही हुँ। इतने में उसका स्वामी (पति) घर आकर प्रणय की बातें करने लगता है कि अब मैं कभी भी तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊँगा। इस खुशी में नायिका झूम उठती है , और वह पिंजरे में पल रहे तोते से कहती है कि ‘‘ऐ तोते‘‘ ये जो तेरा पिंजरा है यह पुराना हो गया है। इसे फेंक कर मैं तेरे लिए नया पिंजरा लाऊँगी।

भावार्थ:-

प्रस्तुत लुड्डी लोकनृत्य गीत में नायिका, नायक के वियोग में तड़पती नजर आती है। नायक के बिना नायिका की क्या दुर्दशा होती है इसको उपरोक्त लुड्डी लोकगीत में व्यक्त किया गया है। इस गीत में वियोग श्रंगार का अंकन हुआ है। प्रस्तुत लोकगीत की स्वरलिपि इस प्रकार है:-

सा ख	सा प	स रू	सा ए	सा ले	श्रे या	रे ब	सा ण
नी़ वा	प़ ·	प़ ·	प़ स	नी़ ख	स प	रे री	म ·
म ज	रे ली़	रे म	सा र	सा दी	— ·	सा ·	— ·
प ज	—प ·ली़	ध़ म	प र	म दी	श्रे ·	रे मे	सा री
सा जा	—रे ··	नी़ ·	नी़ न	नी़ ख	स प	रे री	म ·
म ज	रे ली़	रे म	नी़ र	सा दी	— ·	— ·	— ·

लोकगीत के शेष चरण इसी क्रम से दोहराए जायेंगे।

उक्त लुड्डी लोकनृत्य गीत में सा रे नी़ प़ नी़ सा तथा रे म म रे सा स्वर समुदाय राग वृन्दावनी सांरग के स्वरूप को व्यक्त करते हैं। यह लोकगीत कहरवा ताल के समान लोकताल में गाया जाता है।

संदर्भ

1. ब्रज की कलाओं का इतिहास, प्रभुदयाल मित्तल, पृष्ठ-36,37।
2. नाट्यशास्त्र (भरतमुनि प्रणीतं), श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री ,पृष्ठ-135-1984।
3. मालविकाग्निमित्रम् , डा. रमाशंकर पाण्डेय, पृष्ठ-12।
4. श्री मदवाल्मीकि रामायण (अयोध्याकाण्ड पूर्वार्द्ध), चतुर्वेदी द्वाराकाप्रसाद शर्मा, पृष्ठ-33।
5. भारतीय संगीत वाद्य, डा. लालमणि मिश्र, पृष्ठ-5।
6. संगीत परिजातः अहोवल पण्डित (तृतीय संस्करण) पृष्ठ-11 (भाष्यकार कलिंदं)
7. राजतंरागिणि,पाण्डेय रामतेज शास्त्री ,पृष्ठ-229।

Hill Quest: A Multidisciplinary, National Peer-Reviewed Journal
ISSN 2454-3144 | Volume 10, Issue 01, January-June 2023
http://hillquest.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2023

8. प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृति भुमिका , डा. राम जी उपाध्याय ,पृष्ठ-908।
9. ऋग्वेद:- भीमदेवः अमर नाथः के॰ एस॰ राम स्वामि शास्त्री पीताम्वरदत पृष्ठ-661
10. नाटयाशास्त्रम्-भरतमुनि प्रणीतं-व्याख्याकार श्री बाबू लाल शुक्ल शास्त्री, पृष्ठ-133।
11. ब्रज की कलाओं का इतिहास, प्रभुदयाल मित्तल, पृष्ठ-42।
12. कथक प्रसंग, रश्मि वाजपेयी पृष्ठ-36
13. संगीतबोध, डा. शरचन्द्र श्रीधर पराजेयं पृष्ठ-66
14. सिद्धांन्त कौमदी, पृष्ठ-417, वैंकटेश्वर प्रैस मुम्बई
15. ऋग्वेद 3/53/12
16. डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी,जनपद, लोक साहित्य का अध्ययन, अंक अक्तूबर, 1952 पृष्ठ-65
17. भारतीय लोक साहित्य-श्याम परमार, राजकमल दिल्ली 1954 पृष्ठ-10
18. डा. वासुदेव शरण अग्रवाल-सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति विशेषांक सम्वत् 2010 पृष्ठ-65
19. लोक साहित्य की भूमिका-डा. कृष्णदेव उपाध्याय पृष्ठ-28
20. श्री मुकन्द लाल श्रीवास्तव, ज्ञान शब्द कोश पृष्ठ-712
21. डा. कृष्ण देव उपाध्याय , हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास पृष्ठ-4
22. पूर्णिमा श्रीवास्तव , लोकगीतों में समाज पृष्ठ-9
23. डा. श्री राम शर्मा , लोक साहित्य सिद्धान्त और प्रयोग पृष्ठ-3
24. डा. सत्येन्द्र, मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन पृष्ठ-54
25. मृदुला बिहारी, लोकनृत्य हमारी जीवन परम्परा , पत्रिका आजकल , जून, 1982 पृष्ठ-15
26. डा. यादवेन्द्र शर्मा, हि0 प्र0 के ज़िला मण्डी व बिलासपुर के लोकगीतों का साँगीतिक पक्ष एक सघन अध्ययन पृष्ठ-612
27. डा. चमन वर्मा, मंडियाली लोक संस्कृति व सांगीतिक विधाआंे का आलोचनात्मक अध्ययन पृष्ठ-266
28. हरिश्चन्द्र उपेली , भारतीय जन जातियां, जीवन कला पृष्ठ-145
29. हरिश्चन्द्र उपेली , भारतीय जन जातियां, जीवन कला, पृष्ठ-145।
30. ओम चन्द हाण्डा , पश्चिम हिमालय की लोक कलाएं, पृष्ठ-117-118।
31. लक्ष्मी नारायण गर्ग , संगीत, लोकसंगीत अंक पृष्ठ-43-44
32. केशव आनन्द , हिमाचल का लोक संगीत पृष्ठ-172
33. आचार्य सूर्यामणि शास्त्री, भारतीय नृत्य परम्परा एवं शैली पत्रिका 'संगीत', अप्रैल 1997 पृष्ठ-34-35।
34. कैलाश चन्द्र वृहस्पति , संगीत चिंतामणि ,पृष्ठ-55-56।
35. डा. चमन लाल वर्मा, मण्डियाली लोक संस्कृति व सांगीतिक विधाओं का आलोचनात्मक अध्ययन, पृष्ठ-85-86।